आती। मैं आज भी सारे तत्वों के संकेत नहीं जानती, मगर क्या उससे मेरी रसायन की समझ में कोई अंतर पड़ता है? मेरे ख्याल में नहीं पड़ता।

एक परीक्षक थे जो मुझसे अपेक्षा करते थे कि मुझे लोहे का परमाणु भार पता होना चाहिए, मगर क्यों पता होना चाहिए? मैं कभी भी आवर्त तालिका देखकर पता लगा सकती हूं। बच्चों से तथ्य याद करने की अपेक्षा काफी मूर्खतापूर्ण है। फिर आपका सवाल है कि क्या उन्हें भाषा की समस्या थी। मुझे लगता है कि सारे बच्चों को भाषा दक्षता की समस्या होती है, हो.वि.शि.का. के बच्चे कोई विशेष नहीं हैं। तो मेरे ख्याल में यह कोई मुद्दा नहीं है कि क्या उन्हें भाषाई समस्या थी या उन्होंने क्यों अन्य किताबें नहीं पढ़ीं।

फिर हो.वि.शि.का. में मूल्यांकन कैसे किया जाता था? पिछले सत्र में इसकी बात हो चुकी है और मैंने वाकई इस पर ध्यान नहीं दिया है। मुझे सिर्फ इतना पता है कि एक प्रश्न पत्र होता था और फिर देखा जाता था कि विभिन्न बच्चों ने कैसे जवाब दिए हैं, और यह देखने की कोशिश होती थी कि कौन-से प्रश्न बच्चों के बीच ज़्यादा विभेद कर पाते हैं। यदि सारे बच्चे किसी प्रश्न का जवाब दे दें, तो उस पर ध्यान नहीं दिया जाता था, यदि कोई बच्चा जवाब न दे सके, तो उस पर भी ध्यान नहीं दिया जाता था। मुझे बारीकियां पता नहीं हैं।

फिर शिक्षकों की तैयारी की बात आती है। मैंने शायद अंत में कहा था कि शिक्षकों की तैयारी बहुत ज़रूरी है और मैं पूरी तरह सहमत हूं कि पाठ्य पुस्तक लेखकों का बच्चों के साथ अनुभव होना चाहिए - यह एक प्रमुख समस्या है। एन.सी.ई.आर.टी. में बैठे लोग, मुझे नहीं लगता कि उन्होंने अपने बचपन के बाद कभी बच्चे देखे हैं। उबाऊ अवधारणाओं के बारे में...मैंने यह नहीं कहा था कि अवधारणाएं उबाऊ होती हैं। मैंने कहा था कि एन.सी.ई.आर.टी. की पुस्तकों में उन्हें बहुत उबाऊ ढंग से प्रस्तुत किया गया है। और मैं यह नहीं कहूंगी कि परमाणु संरचना उबाऊ है। मैंने यह कहा था कि इस बात पर चर्चा होना चाहिए कि इसे किस स्तर पर पढ़ाया जाए। यह बहुत ही अमूर्त अवधारणा है। क्या आप इसे माध्यमिक स्कूल के स्तर पर शामिल करना चाहेंगे? नवीनतम एन.सी.ई.आर.टी. के सिलेबस में यह माध्यमिक स्कूल के स्तर पर नहीं है।

अध्यक्ष : ठीक है। अब हमारे चौथे वक्ता, रोहित धनकर। आपके पास 20 मिनट हैं।

रोहित धनकर

धन्यवाद महोदय। दोस्तो, मुझे यकीन है कि अब तक आप पाठ्यक्रम सम्बंधी ज्ञान से सराबोर हो गए होंगे, और मेरे कई विचार अब काफी उबाऊ विचार लगेंगे। इसका एक कारण है। रमा कांत ने 20 तारीख को मुझे कहा था कि मैं इस विषय पर बोलूं, उससे पहले मुझे भनक तक नहीं थी, और मुझे समय ही नहीं मिला, इसलिए मैं पूरी तैयारी से नहीं आया हूं। आम तौर पर मेरी तैयारी कम ही होती है मगर आज तो यह निहायत कम है। तो कुछ उबाऊ विचारों के लिए कमर कस लीजिए। जो लोग मुझे जानते हैं, उनको मेरी बातें दोहराव लगेंगी। जो लोग मुझे नहीं जानते, उनको मेरी अधिकांश बातें समझ से परे लगेंगी। तो मैं आपसे थोड़े धैर्य की गुज़ारिश करूंगा।

मेरा ख्याल है कि शुरुआत इस राष्ट्रीय पाठ्यक्रम ढांचे (एन.सी.एफ.) की बहस से करूं क्योंकि एन.सी.एफ. की मेरी समझ और इस पैकेज में प्रकाशित साहित्य की समझ यही है कि कोई राष्ट्रीय पाठ्यक्रम हो ही नहीं सकता। कोई राष्ट्रीय सिलेबस नहीं हो सकता और न ही कोई राष्ट्रीय पाठ्य पुस्तक हो सकती है मगर एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम ढांचा संभव है। और कोई भी ढांचा संसाधन सामग्री का एक पैकेज होता है जिससे लोगों

को आम सहमति के कुछ सिद्धांतों के आधार पर अपना पाठ्यक्रम, अपने सिलेबस और अपनी पाठ्य पुस्तकें विकसित करने में मदद मिलती है। ये सिद्धांत अधिकतर भारत के संविधान और हमारी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में से निकलते हैं। यह तो एन.सी.एफ. में और इस पैकेज में संग्रहित एकाधिक फोकस समूह के पर्चों में कहा गया है। यह ढांचा और एन.सी.एफ. यह भी सुझाव देते हैं कि लोगों को ज़िला स्तर तक अपना पाठ्यक्रम बनाने की छूट मिलनी चाहिए, अलग-अलग पाठय पुस्तकें हों, पाठ्य पुस्तकों के एकाधिक पैकेज हों, जिनमें से स्कूल चुनाव कर सकें। यानी एक राष्ट्र-व्यापी सिलेबस और एक राष्ट्र-व्यापी पाठ्य पुस्तक का विचार इस पैकेज में लिखी बातों के विरुद्ध जाता है और मुझे लगता है कि मीडिया रिपोर्टिंग या कहीं और कुछ गफलत है, मगर पता नहीं क्या।

इसके बाद मैं पाठ्यक्रम सम्बंधी चयन पर आता हूं। मेरे विचार में पाठ्यक्रम बच्चा जहां है, वहां से एक शिक्षित व्यक्ति की संकल्पना तक पहुंचने के लिए अनुभवों, गतिविधियों, ज्ञान, मूल्यों और हुनर का एक नक्शा है। इसमें उन विधियों को लेकर भी कुछ कहा जाना चाहिए जो इस नक्शे पर दिखाए गए रास्तों को तय करने में इस्तेमाल की जा सकती हैं, मगर ये विधियां दिशानिर्देशों और सिफारिशों के रूप में होनी चाहिए। इसके अलावा यह भी बताया जाना चाहिए कि इसके लिए किस तरह की सामग्री का उपयोग किया जा सकता है। तो मेरे विचार में यह पाठ्यक्रम है। जहां तक पाठ्य पुस्तक, शायद आप पाठ्यक्रम सामग्री कह सकते हैं, का सवाल है तो एक ही पाठ्यक्रम को पाठ्य पुस्तकों के एकाधिक सेट्स की मदद से लागू किया जा सकता है, इसलिए पाठ्य पुस्तकों का एक सेट विशेष उसी तरह से पाठ्यक्रम का अंग हैं जिस तरह से लक्ष्य और यह नक्शा हैं।

हम विज्ञान में पाठ्यक्रम चयन की चर्चा कर रहे हैं। मेरा ख्याल है कि एक थोड़ा व्यापक परिप्रेक्ष्य जोड़ने का वक्त आ गया है। हम विज्ञान की बात कर रहे हैं, मगर ज़रा शिक्षा को देखें और शिक्षा की समग्र तस्वीर में विज्ञान का स्थान निर्धारित करने का प्रयास करें और फिर देखें कि विज्ञान के अंदर क्या विकल्प हैं। समग्र तस्वीर में विज्ञान को स्थित करने से विज्ञान के अंदर चयन पर असर पड़ेगा। मैं संक्षेप में यही करने का प्रयास करूंगा।

मुझे लगता है कि जिस अर्थ में मैं बात कर रहा हूं, उसमें कम से कम चार कारक पाठ्यक्रम सम्बंधी चयन को प्रभावित करेंगे। एक तो स्वाभाविक रूप से बच्चा है - हम बच्चे को केंद्र में रखने का गुणगान कर रहे थे। मैं अब कुछ और चीज़ों को केंद्र में रखना चाहूंगा। उम्मीद करता हूं कि केंद्र में बहुत भीड़भाड़ नहीं हो जाएगी। दूसरी चीज़ है शिक्षित व्यक्ति की संकल्पना, जो इस पर असर डालेगी। तीसरी चीज़ है कि हम ज्ञान से क्या समझते हैं, यानी ज्ञान की प्रकृति। मैं इसको थोड़ा विस्तार दूंगा। और चौथी है, बच्चे का परिवेश, और इसमें यह शामिल है कि बच्चे को किस तरह के शिक्षक और स्कूल उपलब्ध हैं।

इस समय हमारे देश में एक खंडित परिस्थिति है जहां कुछ लोग बच्चे पर अतिशय ज़ोर देते हैं जबकि कुछ लोग पाठ्य पुस्तक की अलंघ्यता पर अतिशय ज़ोर देते हैं। मगर दोनों के अपने-अपने खतरे हैं। हमने पाठ्य पुस्तक की अलंघ्यता और ज्ञान वाले हिस्से के खतरों पर काफी विस्तार में चर्चा की है। मगर मैं आपको बच्चों से शुरू करने की बात पर अतिशय ज़ोर देने के खतरों के प्रति भी आगाह कर दूं। मैं इसे भोला-भाला बाल-केंद्रीकरण कहूंगा। अक्सर अध्ययनों के आधार पर यह तर्क दिया जाता है कि हमने पाया कि 50 स्कूलों में कक्षा 3 के बच्चे 'क' अवधारणा नहीं समझ सकते है, लिहाज़ा 'क' अवधारणा कक्षा 3 में नहीं पढ़ाई जानी चाहिए। मेरे ख्याल में यह भोले-भाले बाल-केंद्रीकरण का परिणाम है। आपको यह भी सोचना चाहिए कि उन

स्कूलों में इस्तेमाल की जा रही विधियां शायद ठीक न हों। इसलिए आपको वह अवधारणा पढ़ाने की कोशिश करके देखना चाहिए कि कितने बच्चे उसे अर्जित कर पाते हैं। क्या आपके द्वारा अपनाई गई विधियों से बच्चे उस उम्र में वह अवधारणा सीख पाते हैं। कुछ लोग इस बात की व्याख्या यों करेंगे मानो मैं कह रहा हूं कि विषय वस्तु और विधियां अलग-अलग नहीं किए जा सकते। मैं यह कह रहा हूं कि हो सकता है कि 'क' अवधारणा, जो हम चाहते हैं कि बच्चे सीखें, को दस अलग-अलग विधियों से पढ़ाया जा सकता है। उन दस में से हो सकता है कि सात एकदम अनुपयुक्त हों और बच्चे उन विधियों से न सीख सकें, और तीन उपयुक्त हों। हमें वे तीन विधियां खोजनी होंगी, और यदि ऐसी कोई विधि नहीं है और हमें फिर भी लगता है कि शिक्षित व्यक्ति की संकल्पना तथा ज्ञान की प्रकृति के लिहाज़ से वह अवधारणा उसी उम्र में आनी चाहिए, तब बतौर शिक्षक यह हमारा फर्ज़ है कि हम उपयुक्त विधियां खोजें। तो यह तब होगा जब आप केंद्र में अकेले बच्चे को रखेंगे। अतः मेरा सुझाव है कि बच्चे के साथ-साथ हम ज्ञान की प्रकृति को भी केंद्र में रखें। हम इस बात पर थोड़ी देर में वापिस आएंगे।

दूसरी बात, मैं कहूंगा कि शिक्षित व्यक्ति की हमारी संकल्पना वास्तव में पाठ्यक्रम सम्बंधी चयन को बहुत सशक्त ढंग से प्रभावित करती है। हम सब इस बात को जानते हैं, मैं बहुत विस्तार में नहीं जाऊंगा मगर मैं आपको याद दिला दूं कि यदि शिक्षित व्यक्ति की आपकी संकल्पना एक स्वतंत्र निर्णय में सक्षम व्यक्ति की है या जैसा कि एन.सी.एफ. में लिखा है, एक ऐसे व्यक्ति की है जो विचार और कार्य में स्वतंत्र हो, तो आपको विज्ञान को विशेष ढंग से पढ़ाना होगा और आप विधियों तथा विषय वस्तु के चयन में भी ध्यान रखेंगे कि वे उस तरह के व्यक्ति के विकास में योगदान दें। मगर यदि आपकी संकल्पना यह नहीं है, और आपकी संकल्पना कहती है कि एक शिक्षित व्यक्ति वह है जो वैश्विक अर्थ व्यवस्था में प्रतिस्पर्धा कर सके, और विचार व कार्य की स्वतंत्रता उतनी महत्वपूर्ण नहीं है, और गलाकाट होड़ की कुछ अन्य क्षमताएं, समयबद्ध ढंग से काम करना वगैरह ज़्यादा महत्वपूर्ण हैं, तो आप अपनी विधियों और विषय वस्तु का चयन उस अनुसार करेंगे। तो यह दूसरा पहलू है।

तीसरा कारक ज्ञान की प्रकृति का है जो आज की चर्चा की दृष्टि से सबसे प्रासंगिक है और हम इस बात पर आते हैं कि इसका विज्ञान के लिए क्या अर्थ है। मुझे लगता है कि हमारे अधिकांश मौजूदा पाठ्यक्रम दस्तावेज़ ज्ञान की प्रकृति या खास किस्म के ज्ञान को (शिक्षा के) लक्ष्यों से नहीं जोड़ते। हम अपने वक्तव्यों में लक्ष्य लिखते ज़रूर हैं और फिर हम विषय वस्तु वगैरह पर आ जाते हैं मगर हम यह कड़ी नहीं जोड़ते कि हमें क्यों लगता है कि विज्ञान सीखने से आलोचनात्मक सोच में मदद मिलेगी, जैसा कि राकेश कह रहे थे। और आलोचनात्मक सोच या स्वयं निर्णय लेने में सक्षम व्यक्ति के विकास में विज्ञान और इतिहास और आचार शास्त्र की प्रासंगिकता या तुलनात्मक महत्व क्या है? क्या विज्ञान ही इसमें मदद करेगा या इतिहास भी मदद कर सकता है? या एक व्यक्ति के विकास में नैतिकता या सौंदर्य बोध की क्या भूमिका है? हो सकता है कि आज हमारे शोध साहित्य में इस बात की गहरी समझ उपलब्ध हो कि जिस तरह का ज्ञान हमारे पास है और जिस ढंग के व्यक्ति व क्षमताएं हमारे अंदर विकसित हुए हैं, उनके बीच की कड़ियां क्या हैं। हो सकता है कि ये कड़ियां काफी स्पष्ट हो या कतिपय साहित्य में बहुत स्पष्ट हो, मगर हमारे पाठ्यक्रम दस्तावेज़ों में ये कड़ियां स्पष्ट रूप से नज़र नहीं आतीं। ये चीज़ें एक-दूसरे से अलग-अलग नज़र आती हैं।

जब हम ज्ञान के किसी भी क्षेत्र विशेष की बात करते हैं, तो मेरे ख्याल में इसमें भी हमें कम से कम तीन कारकों पर ध्यान देना चाहिए। पहला है कि हम विज्ञान या इतिहास या कुछ भी पढ़ाएं, वह बच्चे के जीवन से जुड़ना चाहिए। और यहां मैं सिर्फ यह नहीं कह रहा हूं कि वहां से शुरू करें जहां बच्चा है। जब हम कहते

हैं कि वहां से शुरु करें जहां बच्चा है, तो बात शायद बच्चे के संज्ञान स्तर की होती है, मगर जब आप बच्चे के जीवन से जोड़ने की बात करते हैं तब शायद बच्चे के संपूर्ण सामाजिक-आर्थिक व प्राकृतिक परिवेश का ध्यान रखना होगा। तो यह एक महत्वपूर्ण बात है, चाहे आप विज्ञान पढ़ाएं या इतिहास या कविता या कुछ और। एक अन्य चीज़ जिसका ज़िक्र मैं करना चाहूंगा वह है ज्ञान के एक क्षेत्र विशेष का ज्ञान के अन्य क्षेत्रों से सम्बंध, जैसे विज्ञान या विज्ञान सीखने का भाषा, गणित, इतिहास तथा ज्ञान के अन्य समस्त क्षेत्रों में सीखने से सम्बंध। ज्ञान के हर क्षेत्र या विषय के पाठ्यक्रम में शायद यह बताया जाना चाहिए कि कहां उसका सम्बंध ज्ञान के अन्य क्षेत्रों से है क्योंकि आखिरकार ज्ञान का हर क्षेत्र हमारी सुविधा के लिए कृत्रिम रूप से बनाया गया क्षेत्र है। इस तरह से बच्चे के दिमाग में एक सुसंगत समग्र चित्र का निर्माण होना चाहिए। और तीसरी बात यह है कि ज्ञान का प्रत्येक क्षेत्र या विषय में कम से कम दो चीज़ों का समावेश होता है; एक है ज्ञान का भंडार और दूसरी है खोजबीन की विधि या सत्यापन की विधि। 'खोजबीन की विधि' शब्द का उपयोग मैं एक विस्तृत अर्थ में रहा हूं जिसमें ज्ञान सम्बंधी दावों के सत्यापन की प्रक्रिया भी शामिल है। शायद इन दोनों चीज़ों का ध्यान रखना ज़रूरी है। अब यह काफी संभव है कि सारा ज़ोर सत्यापन की प्रक्रिया और खोजबीन की प्रक्रिया पर आ जाए और ज्ञान के भंडार की उपेक्षा हो जाए। और मुझे लगता है कि यह किसी भी विषय के लिए, और खासकर विज्ञान के लिए बहुत हानिकारक होगा क्योंकि विज्ञान में आप विश्व के बारे में ज्ञान के साथ और इन विधियों के साथ काम करते हैं। और आप सत्यापन की इन विधियों का उपयोग कितनी सहजता व सफलता से कर पाएंगे यह उस विषय में आपके पूर्व ज्ञान पर काफी हद तक निर्भर है। विज्ञान में यह सम्बंध काफी मज़बूत है। मैं कई क्षेत्रों में ज्ञान सम्बंधी दावों का आकलन तब तक नहीं कर सकता जब तक कि मुझे उन क्षेत्रों की अन्य अवधारणाएं व तथ्य पता न हों। लिहाज़ा ये दोनों चीज़ें साथ-साथ चलनी चाहिए। जब हम उन कार्यक्रमों की बात करते हैं जिनमें इस बात पर बहुत ज़ोर दिया जाता है कि हर चीज़ कक्षा में की जाए और उसी के आधार पर आगे बढ़ा जाए, तो खतरा यह होता है कि इसी पक्ष को बहुत ज़्यादा महत्व मिलेगा। दूसरा पक्ष तो बखूबी आज़माया हुआ है और हमारे सारे स्कूल जानकारी के टुकड़े प्रदान कर रहे हैं, यह चिंता किए बगैर कि उन्हें जोड़कर ज्ञान का समझने योग्य भंडार निर्मित हो; इनमें बच्चों को खोजबीन की विधियां देने की तो बात ही नहीं आती। तो यह दूसरा पक्ष है। इन दो के बीच् संतुलन निहायत ज़रूरी है।

मैं इस बाबत भी कुछ कहूंगा कि यह कैसे किया जा सकता है और किस स्तर पर। और निर्माणवादी शिक्षा पद्धति (constructivist pedagogy) पर भी कुछ कहूंगा। मेरा मानना है कि यह - निर्माणवादी शिक्षा पद्धति - विज्ञान में बहुत महत्वपूर्ण है। निर्माणवादी शिक्षा पद्धति और आलोचनात्मक शिक्षा पद्धति और विभिन्न अन्य शिक्षा पद्धतियों की एक दिक्कत यह है कि इनकी स्पष्ट परिभाषाएं नहीं हैं और इन्हें समझने का कोई तरीका नहीं है। तो हम या तो एक निहायत रैडिकल मत अख्तियार कर सकते हैं कि बच्ची को कक्षा में किसी वयस्क की दखलंदाज़ी से मुक्त रहकर अपने सारे ज्ञान का निर्माण स्वयं करना है या हम थोड़ी उदार भूमिका अपना सकते हैं कि निर्माणवादी शिक्षा पद्धति का मतलब यह है कि आप बच्ची के अनुभव से शुरू करें, बच्ची के साथ संवाद करें और धीरे-धीरे उसे उस समझ के समीप ले जाएं जो उस क्षेत्र में उपलब्ध है, यानी पहले से उपलब्ध विज्ञान की समझ। आप धीरे-धीरे उसके समीप जा रहे हैं, मगर कुछ शर्तों के साथ। आपको धैर्य की ज़रूरत होगी। यह सिर्फ एक भावुक आव्हान नहीं, एक शिक्षा शास्त्रीय बात है। धैर्य का मतलब है कि अवधारणाओं को विकसित किया जाए, अपने दिमाग में विभिन्न अवधारणाओं के अंतर्सम्बंध बनाए जाएं, इसमें मुझे समय लगता है, और बच्चे को भी इसमें समय लगता है। इसलिए धैर्य के साथ, बच्चे के संज्ञान ढांचों

का ख्याल रखते हुए, ज़रूरी होने पर संशोधन करते हुए, कहने का मतलब कि बच्चे के साथ संवाद बनाते हुए कोशिश करें कि वैकल्पिक उत्तर दे देने की बजाय बच्चे को मौजूदा ज्ञान के दायरे में ऐसे स्तर पर लाएं जहां बच्चे को स्वयं अपने मत पर पुनर्विचार करना पड़े, और खुलापन रखा जाए, यह समझते हुए कि आज हम जो निष्कर्ष निकाल रहे हैं वह आज़माइशी है, वह बदल सकता है मगर इसे बदलने से पहले गंभीर व तर्कसंगत विचार करना ज़रूरी है। यह ज्ञान इतना कमज़ोर भी नहीं है कि इसे किसी भी दिन उठाकर फेंका जा सके, न ही इतना मज़बूत है कि इसे हिलाया भी न जा सके। यदि इस तरह की शिक्षा पद्धति को हम मोटे तौर पर निर्माणवादी शिक्षा पद्धति कहें, तो मुझे लगता है कि हमने निर्माणवादी शिक्षा पद्धति के विरुद्ध जो सवाल उठाए हैं, वे नदारद तो शायद न हों मगर कम से कम थोड़े हल्के हो ज़ाते हैं और हम उनके साथ जी सकते हैं।

क्या मुझे यह अनुमति है कि मैं विजय की बात पर कुछ टिप्पणी कर सकूं? कक्षा में प्रयोगों को लेकर उनका आग्रह और निर्माणवादी शिक्षा पद्धति के विरुद्ध उनकी चेतावनी, मुझे ऐसे लगते हैं जैसे इन दो चीज़ों के बीच कोई टकराव है - हम इसके बारे में बाहर भी बात कर सकते हैं। क्योंकि जब आप कहते हैं कि कक्षा में सारी चीज़ें प्रयोगों से ही उभरनी चाहिए, तो आप निर्माणवादी शिक्षा पद्धति के प्रति थोड़े शंकालु हो रहे हैं, यह मानकर चल रहे हैं कि इन दो अवधारणाओं के बीच कुछ खाई है। मेरे ख्याल में इस समय मैं इतना ही कहूंगा। मैं मूल्यांकन वगैरह को छोड़ रहा हूं क्योंकि लोगों ने उसके बारे में काफी बात की है और हम इस पर चर्चा कर सकते हैं।

चर्चा

अध्यक्ष : शुक्रिया रोहित। अब हमारे पास ज़्यादा समय नहीं है, मात्र तीन सवालों के लिए समय है। तो आप, वे और वे, हमारे पास सिर्फ तीन के लिए समय है।

अरविंद फाटक : मैं अरविंद फाटक हूं, विद्या भवन से। धन्यवाद धनकर साहब। आपने बहुत अच्छे से पाठ्यक्रम की अवधारणा और एन.सी.एफ. का महत्व स्पष्ट किया। मेरा एक सवाल है। एन.सी.एफ. होना बहुत अच्छी बात है और उसमें किसी को कोई आपत्ति भी नहीं है मगर हाल के दिनों में एन.सी.एफ. को लेकर काफी विवाद रहे हैं। तो एन.सी.एफ. में विचाराधाराओं की (ideological) दखलंदाज़ी न हो, इसके लिए क्या उपाय हैं? सुरक्षा के क्या उपाय किए जाने चाहिए? एक शिक्षाविद के रूप में मुझे इसकी चिंता है क्योंकि आजकल राजनैतिक दल एन.सी.एफ. तय करने लगे हैं। दूसरी बात है कि हर स्तर की विज्ञान शिक्षा में शिक्षा पद्धति का निर्धारण करने के लिए एकमात्र आधार के तौर पर निर्माणवाद को लेकर मैं भी चिंतित हूं। आप इसके बारे में क्या सोचते हैं?

अमिताभ मुखर्जी : मैं अमिताभ मुखर्जी। मेरी एक टिप्पणी है, एक कोशिश है थोड़ा तालमेल बनाने की, चार में से तीन वक्ताओं ने जो कुछ कहा और रोहित ने अंत में जिस तनाव का ज़िक्र किया उनके बीच। मैं निर्माणवादी प्रयोग का सुझाव देना चाहूंगा जहां सोच समझकर प्रयोगों की एक ऐसी ृंखला बनाई जाती है, जिसे निर्माणवादी शब्दावली में स्कैफोल्डिंग कहेंगे, जिसे वयस्क बनाते हैं ताकि बच्चे सक्रिय होकर ज्ञान का निर्माण कर सकें। धन्यवाद।

तुषार : दो टिप्पणियां। एक तो है सबसे सृजनात्मक शिक्षकों के अध्ययन के बारे में। ये वे शिक्षक हैं जो पाठ्यक्रम के साथ ज़ोखिम उठाते हैं, चाहे एक अध्याय की बात हो या एक अवधारणा की, यह बहुत-बहुत महत्वपूर्ण है। तो आप शिक्षकों में यह ज़ोखिम उठाने की क्षमता कैसे पैदा करेंगे? दूसरी एकीकरण के बारे में है। एकीकरण के नाम पर मैंने हर तरह की चीज़ें होती देखी हैं। एक बच्चे ने गाय का निबंध रटा था मगर प्रश्न आया श्मशान घाट पर। उसने शुरू किया "वहां बहुत सारी घास थी और गाय ने चरना शुरू कर दिया।" और अंततः उसने गाय पर निबंध लिख डाला।

रोहित धनकर : एन.सी.एफ. में विचारधारा आधारित पूर्वाग्रहों (ideological biases) के बारे में हमें यह समझना होगा कि प्रजातंत्र में विचारधारा सम्बंधी और राजनैतिक टकराव हर चीज़ में होंगे। हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि यह हमारी नियति है, हमें इसके साथ जीना होगा। यह एक बात है। मगर इस समय मेरे दिमाग में एक बात आ रही है - मैं एन.सी.एफ. के बारे में लिखी गई चीज़ें पढ़ता रहा हूं, और यह बात मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि लोग एन.सी.एफ. से क्या समझते हैं। कक्षा संचालन के मैनुअल से लेकर भारत के संविधान तक सारी अपेक्षाएं हैं एन.सी.एफ. से। इसलिए हमें बातचीत को शैक्षणिक स्तर पर लाना होगा, यह स्पष्ट करना होगा कि यह दस्तावेज़ क्या है, इसकी क्या भूमिका है, और इस बातचीत में पेशेवर शिक्षाविदों और पालकों को शामिल करना होगा। यदि उनकी बात ज़्यादा आएगी और हमारे पीछे कुछ शैक्षणिक सिद्धांत होंगे, तो खतरा थोड़ा कम होगा। यही एक चीज़ है जो मैं इस समय सोच पा रहा हूं।

मगर दूसरी बात यह है कि जिन लोगों को राजनैतिक विचारधारा के पूर्वाग्रह ठीक नहीं लगते, उन्हें खड़े होकर मीडिया में बहस करनी होगी। यह एक और तरीका है इस तरह की चीज़ों को रोकने का - पाठ्यक्रम को लेकर एक विमर्श विकसित करना, एक तर्कसंगत विमर्श विकसित करना। फिलहाल कुछ विमर्श तो है, पता नहीं इसे विमर्श कहूं या शोरगुल, इस तरह का कुछ तो है मगर इसमें मुझे बहुत संदेह है कि यह एक सुसंगत तर्कसंगत विमर्श है। तो यह एक और चीज़ है। हां, मैं पाठक जी से सहमत हूं कि यदि किसी भी तरह का 'वाद' शिक्षा का एकमात्र आधार बना तो इससे काम नहीं चलेगा। मगर फिलहाल बच्चों और उनकी सीखने की प्रक्रिया की हमारी समझ से एक संकेत मिलता है कि शायद सबसे अच्छा तरीका यही होगा कि बच्चे अपने अनुभवों से और अपनी क्षमताओं से, वयस्कों के मार्गदर्शन में, अपना ज्ञान स्वयं निर्मित करें। मगर अन्य सारे मापदंडों या अन्य सारे तरीकों को बाहर रखना अच्छी बात नहीं होगी।

अमिताभ का सुझाव बहुत अच्छा है। मेरे ख्याल में मैं इसका समर्थन करूंगा - निर्माणवादी प्रयोग। बहुत अच्छा है। जब मैं शिक्षक था, रोज़ाना योजना बनाता था कि मैं कक्षा में क्या करूंगा, और हर दिन, बिना नागा मैं इसे बदलता था। तो मुझे लगता है कि हमें पाठ्यक्रम का सम्मान करना चाहिए मगर उसे पत्थर की लकीर नहीं मानना चाहिए, हमें उसके साथ थोड़ी उछलकूद करनी चाहिए। और शिक्षक ऐसा तभी कर सकता/ती है जब उसके पास पेशेवर दक्षता हो और स्वायत्तता हो। यही एकमात्र रास्ता लगता है। धन्यवाद।